विषय : हिंदी शिक्षणशास्त्र

(घटक २,३)

प्रो. नविता सुहास सूद.

घटक २ : हिंदी भाषा की प्रकृती व महत्व

अ. भाषा का अर्थ, प्रकृती एवं उद्धेश्य : माध्यमिक व उच्च माध्यमिक स्तर पर

१.१ प्रस्तावना

'भाषा' शब्द भाष् धातु से निष्पन्न हुआ है। शास्त्रों में कहा गया है- **''भाष् व्यक्तायां वाचि''** अर्थात् व्यक्त वाणी ही भाषा है। भाषा स्पष्ट और पूर्ण अभिव्यक्ति प्रकट करती है। भाषा का इतिहास उतना ही पुराना है जितना पुराना मानव का इतिहास। भाषा के लिए सामान्यत: यह कहा जाता है कि- 'भाषा मनुष्य के विचार-विनिमय और भावों की अभिव्यक्ति का साधन है।' भाषा की परिभाषा पर विचार करते समय रवीन्द्रनाथ की यह बात ध्यान देने योग्य है कि- 'भाषा केवल अपनी प्रकृति में ही अत्यन्त जटिल और बहुस्तरीय नहीं है वरन् अपने प्रयोजन में भी बहुमुखी है।' इसी प्रकार संरचना के स्तर पर जहाँ भाषा अपनी विभिन्न इकाइयों में सम्बन्ध स्थापित कर अपना संश्लिष्ट रूप ग्रहण करती है जिनमें वह प्रयुक्त होती है। यही कारण है कि विभिन्न विद्वानों ने इसे विभिन्न रूपों में देखने और परिभाषित करने का प्रयत्न किया है –

१.२ भाषा का अर्थ

भाषा अभिव्यक्ति एवं विचार विनिमय का सांकेतिक साधन है। संसार के सभी प्राणी किसी न किसी रूप में अपने भावों की अभिव्यक्ति करते हैं जिसका माध्यम शाब्दिक और अशाब्दिक रूप में सामने आता है। मनुष्य की अनुभूतियों को शाब्दिक भाषा से अभिव्यक्त करना संभव नहीं है उसकी अभिव्यक्ति के लिए मूक भाषा का या अशाब्दिक भाषा का ही

प्रयोग किया जा सकता है, जबकि अधिक दुखी व्यक्ति अपनी वेदना की अभिव्यक्ति आंसुओं के द्वारा ही कर पाता है।

शाब्दिक भाषा में-मनुष्य बोलकर, कुत्ते भो-भौं कर के, हाथी चिंघाडकर, बिल्ली म्याऊं-म्याऊं करके और चूहे चू-चू करके अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करते हैं। व्यापक अर्थ में देखा जाए तो संसार के विभिन्न प्राणियों द्वारा प्रयुक्त भावाभिव्यक्ति के इन साधनो, अंग-प्रत्यंग के संचालन,भाव मुद्राओं और ध्वनि संकेतों को भाषा कहते हैं।विचारों की अभिव्यक्ति ही भाषा है।

१.३ भाषा की परिभाषाएं

भाषा की परिभाषा के विषय में विभिन्न विद्वानों ने अलग-अलग विचार प्रस्तुत किए हैं संसार में वर्षा की व्याख्या सर्वप्रथम संस्कृत आचार्यों ने की है।

पतंजलि के अनुसार- "भाषा वह व्यापार है जिससे वर्णनात्मक या व्यक्ति शब्दों द्वारा अपने विचारों को प्रकट करते हैं।"

काव्यादर्श के अनुसार-" यदि शब्द रूपी ज्योतिष से यह संसार प्रदीप्त होता तब यह समस्त संसार अंधकार में हो जाता।"

तिवारी के अनुसार-"भाषा सुनिश्चित प्रयत्न के फलस्वरुप मनुष्य के मुख या वाणी से नि:सर्त वह सार्थक ध्वनि समष्टि है जिसका विश्लेषण और अध्ययन किया जाता।"

सुकुमार सेन के अनुसार"अर्थवान कंठोधिर्ण ध्वनि समष्टि ही भाषा है।"
क्रौंच के अनुसार"भाषा अभिव्यक्ति की दृष्टि से उच्चरित एवं सीमित ध्वनियों का संगठन है।"

परिभाषा निष्कर्ष के रूप में--भाषा यादृच्छिक वाक् प्रतीकों कि वह व्यवस्था है जिसके माध्यम से समाज के लोग परस्पर अपने विचारों का आदान- प्रदान करते हैं।"

भाषा के द्वारा ही मनुष्य ने अपनी संस्कृति व सभ्यता को विकसित कर भावी पीढ़ी तक पहुँचाया है। समाजवैज्ञानिकों का मानना है कि भाषा का विकास सामाजिक अंतः क्रिया द्वारा होता है। इस तरह भाषा मनुष्य के विकास की आधारशिला है। भाषा शब्द 'भाष्' धातु से बना है जिसका अर्थ है 'बोलना'। अतः भाषा में बोलना समाहित है। हम अपने आस– पास के लोगों के लिए बोल कर विचार प्रकट करते हैं और दूर के लोगों के लिए लिख कर विचार प्रकट करते हैं। इस तरह भाषा में बोलना व लिखना दोनों समाहित है। भारत में बहुत सारी बोलियां बोली जाती हैं जैसे – बघेली, कुमायुँनी, गढ़वाली, मेवाती, ब्रज व अवधी इत्यादि। मौखिक अभिव्यक्ति के लिए प्रत्येक क्षेत्र में उस क्षेत्र की बोली का प्रयोग होता है परन्तु लिखित रूप में भाषा का ही प्रयोग किया जाता हैं। समय के अनुसार बोलियाँ विकसित तौर पर भाषा का रूप धारण कर लेती हैं। इस तरह भाषा बिना हम शिक्षा के किसी भी क्रियाकलाप की कल्पना नहीं कर सकते इसलिए भाषा शिक्षण का महत्व अपने आप में बढ़ जाता है। भाषा संस्कृति का आधार, साहित्य का आधार, सामाजिक प्रक्रिया का आधार, मनुष्य

के चिंतन का माध्यम व संप्रेषण का भी आधार है। भाषा से ही हमारा बौद्धिक, मानसिक, संवेगात्मक व सामाजिक विकास हुआ है। एक तरह से भाषा से ही मनुष्य का विकास हुआ है।

१.४ भाषा का स्वरूप अथवा प्रकृती (Nature of language)

भाषा की प्रकृति निम्न प्रकार से हैं

1. भाषा अर्जित संपत्ति है -

मानव अपने चारों और के समाज और वातावरण से भाषा सीखता है। भारत में उत्पन्न बालक इंग्लैंड में रहकर इसलिए अंग्रेजी बोलने लगता है क्योंकि, उसके चारों और अंग्रेजी का वातावरण रहता है। अतः स्पष्ट है कि भाषा आसपास के लोगों से अर्जित की जाती है और इसलिए यह अर्जित संपत्ति होती है।

२ . भाषा सामाजिक वस्तु है -

भाषा पूर्णता आदि से अंत तक समाज से संबंधित है। उसका विकास समाज में ही होता है। प्रश्न है कि व्यक्ति भाषा का अर्जन कहां से करता है? इसका एक मात्र उत्तर है- समाज से । इसलिए समाज एक सामाजिक संस्था है।

३. भाषा परंपरा है व्यक्ति उसका अर्जन कर सकता है उत्पन्न नहीं -

भाषा परंपरागत वस्तु है। व्यक्ति उसका अर्जन परंपरा और समाज से करता है। एक

व्यक्ति उसमें परिवर्तन तो कर सकता है किंतु उसे उत्पन्न नहीं कर सकता आता है। समाज और परंपरा ही भाषा के जनक और जननी है।

४. भाषा का अर्जन अनुकरण द्वारा होता है -

भाषा को हम अनुकरण द्वारा सीखते हैं शिशु के समक्ष मां जो कहती है। बालक उसे सुनता है और धीरे-धीरे उसे स्वयं सीखने का प्रयास करता है। अरस्तु के शब्दों में- अनुकरण मनुष्य का सबसे बड़ा गुण है।

५. भाषा चिर परिवर्तनशील है -

भाषा के दो रूप होते हैं मौखिक और लिखित। भाषा के दो आधार होते हैं शारीरिक और मानसिक। अनुकरण करता की शारीरिक और मानसिक परिस्थिति सदैव ठीक वैसी ही नहीं रहती जैसे कि उसकी रहती है इसका अनुसरण किया जाता है इसके अतिरिक्त प्रयोग से घिसने और बाहरी प्रभाव से भी परिवर्तन होता है अतः भाषा परिवर्तित होती रहती है।

६. भाषा पैतृक संपत्ति है -

भाषा पैतृक संपत्ति है। पिता की भाषा पुत्र को पैतृक संपत्ति की भांति ही प्राप्त होती है किंतु, ऐसी बात नहीं है यदि किसी भारतीय बच्चे को 1-2 वर्ष की अवस्था से अन्य देश में पाला जाए तो वह हिंदी या हिंदुस्तानी आदि भाषा न समझ सकेगा और ना ही बोल सकेगा। उस देश की ही उसकी मातृभाषा या अपनी भाषा होगी। यदि पैतृक भाषा संपत्ति होती तो भारतीय बालक भारत से बाहर कहीं भी रहकर बिना प्रयास के हिंदी भाषा समझ और बोल लेता।

7. भाषा का कोई अंतिम स्वरूप नहीं -

ऊपर हम कह चुके हैं की भाषा चिर परिवर्तनशील है। उसे आधार पर दो भाषा का कोई अंतिम स्वरूप ही नहीं हो सकता अमृत वर्षा का अंतिम रूप तो अवश्य ही अंतिम होता है परंतु जीवित भाषा में यह बात नहीं है। भाषा के विषय में असत्य नहीं है कि परिवर्तन और अस्थैर्य ही उसके जीवन का घोतक है।

8. सभी भाषाओं की एक भौगोलिक सीमा होती है।

9. प्रत्येक भाषा की एक ऐतिहासिक सीमा होती है।

10. प्रत्येक भाषा की अपनी संरचना अलग होती है- दो भाषाओं का स्वरूप या ढांचा एक सा नहीं होता हो सकता। उसमें ध्वनि,शब्द, रूप, वाक्य या अर्थ आदि किसी भी एक स्तर पर अंतर अवश्य होता है।

11. आशा की धारा संभवत कठिनता से सफलता की ओर जाती है -

सभी भाषाओं के इतिहास से भाषा के कठिनता से सरलता की ओर जाने की बात स्पष्ट है। तर्क है कि मनुष्य का जन्म जात स्वभाव है कि कम से कम प्रयास में अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहता है।

12. प्रत्येक भाषा का स्पष्टत या अस्पष्टत एक मानक रूप होता है।

इस प्रकार भाषा की प्रकृती स्पष्ट होती है ¡ इस कारण वर मानव को विकासिक स्थिती मै मदत करती आ रही है

१.५ हिंदी भाषा के उद्धेश्य

मातृभाषा जीवन के समस्त क्रिया-कलापों के संचार की भाषा है। अत: उसके शिक्षण के उद्देश्य भी व्यापक होंगे। सुनकर समझने, बोलने, पढ़ने और लिखने की दक्षता प्रदान करना भाषा शिक्षण का प्रमुख उद्देश्य है।

माध्यमिक स्तर पर मातृभाषा शिक्षण के उद्देश्यों का निर्धारण हम निम्न आधारों पर कर सकते हैं। इन्हें हम अपने शिक्षार्थियों में व्यवहारगत परिवर्तन अर्थात् मातृभाषा हिन्दी की विभिन्न विधाओं के शिक्षण के पश्चात शिक्षार्थियों के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तनों के रूप में व्यक्त करेंगे।

- मातृभाषा बालक अपने परिवेश में सदा सुनता रहता है, अत: उसके लिए यह स्वाभाविक प्रक्रिया है। किंतु अन्य भाषा के रूप में हिन्दी का श्रवण स्वाभाविक प्रक्रिया के रूप में नहीं होता है। द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण में हमें शिक्षार्थियों के श्रवण कौशल के विकास पर बल देना चाहिए ताकि वे सुनी हुई हिंदी को शुद्ध रूप से बोल सकें तथा अपना उच्चारण शुद्ध कर सकें।
- द्वितीय भाषा के रूप में हिन्दी के शिक्षण में भाषा पक्ष के शिक्षण पर बल देना चाहिए साहित्य के शिक्षण पर नहीं।

- **प्रथम भाषा एवं द्वितीय भाषा के शिक्षण उद्देश्यों में अन्तर होना स्वाभाविक है। प्रथम भाषा मातृभाषा है। अहिन्दी भाषी प्रान्तों में हिन्दी द्वितीय अथवा तृतीय भाषा के रूप मे पढ़ाई जाती है।**
- **मातृभाषा बालक की मानसिक एवं भावात्मक रचना का आधार एवं साधन है। अत: मातृभाषा में हम साहित्यिक सौन्दर्य का बोध, नैतिक मूल्यों का उत्कर्ष एवं व्यक्तित्व विकास करते हैं परन्तु द्वितीय भाषा के उद्देश्य मूलत: कौशलात्मक, ज्ञानात्मक, सौन्दर्य बोधात्मक, रचनात्मक और अभिव्यात्मक उद्देश्यों तक ही सीमित रहते है।**
- **अहिन्दी भाषी प्रदेशों में हिंदी अपने जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नहीं सीखी जाती वरन् देश के अन्य अहिंदी भाषी राज्यों से सम्पर्क स्थापन के लिए एवं अखिल भारतीय स्तर पर व्यावहारिक सम्पर्क साधन के लिए सीखी जाती है।**
- **कुछ विचारकों का मत है कि प्रथम भाषा एवं द्वितीय भाषा शिक्षण में भाषाई कौशल का क्रम मातृभाषा के क्रम से भिन्न हो जाता है। द्वितीय भाषा में पढ़ने का अभ्यास होने पर ही बोलने का अभ्यास हो पाता है, अत: पढ़ना और बोलना एक साथ हो पाता है।**
- **द्वितीय भाषा में पठन कौशल पर विशेष बल देने की आवश्यकता है। द्वितीय भाषा के शिक्षण में "अर्थ बोध" महत्वपूर्ण उद्देश्य है।**

१.६ माध्यमिक स्तर पर हिंदी भाषा के उद्धेश्य

माध्यमिक स्तर पर हिंदी भाषा के उद्धेश्य (प्रथम भाषा के रूप में हिंदी पढ़ने वाले और द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी पढ़ने वाले दोनों बलाकों के संदर्भ मे) तैयार किये गये है।

- किसी भी नई रचना/किताब को पढ़ने/समझने की जिज्ञासा व्यक्त करना।
- समाचार पत्रों/पत्रिकाओं में दी गई खबरों/बातों को जानना – समझना।

- विभिन्न सामाजिक – सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति अपने रूझानों को अभिव्यक्त करना।
- पढ़ी – सूनी रचनाओं को जानना, समझना,व्याख्या करना, अभिव्यक्त करना।
- अपने व दूसरों के अनुभवों को कहना सुनना – पढ़ना लिखना। (मौखिक – लिखित – सांकेतिक रूप में)
- अपने स्तरानुकूल दृश्य – श्रव्य माध्यमों की सामग्री (जैसे – बाल साहित्य, पात्र – पत्रिकाएँ, टेलिविज़न, कम्प्यूटर – इन्टरनेट, नाटक, सिनेमा आदि) पर अपनी राय व्यक्त करना।
- साहित्य की विभिन्न विधाओं (जैसे – कविता, कहानी, निबन्ध, एकांकी, संस्मरण, डायरी आदि) की समझ बनाना और उनका आनंद उठाना।
- दैनिक जीवन में औपचारिक – अनौपचारिक अवसरों पर उपयोग की जा रही भाषा की समझ बनाना।
- भाषा – साहित्य की विविध सृजनात्मक अभिव्यक्तियों को समझना और सराहना करना।
- हिंदी भाषा में अभिव्यक्त बातों की तार्किक समझ बनाना।
- पाठ विशेष को समझना और उससे जुड़े मुद्दों पर अपनी राय देना।
- विभिन्न संदर्भों में प्रयुक्त भाषा की बारीकियों, भाषा की लय, तुक को समझना।
- भाषा की नियमबद्ध प्रकृति को पहचानना और विश्लेषण करना।
- भाषा के नये संदर्भों/परिस्थितियों में प्रयोग करना।
- अन्य विषयों, जैसे – विज्ञान, गणित, सामाजिक विज्ञान आदि में प्रयुक्त भाषा की समुचित समझ बनाना व उसका प्रयोग करना।
- हिंदी भाषा – साहित्य को समझते हुए सामाजिक परिवेश के प्रति जागरूक होना।
- दैनिक जीवन में तार्किक एवं वैज्ञानिक समझ की ओर बढ़ना।
- पढ़ी – लिखी – सुनी – देखी – समझी गई भाषा का सृजनशील प्रयोग।

१.७ उच्च माध्यमिक स्तर पर हिंदी भाषा के उद्धेश्य

- कक्षा आठ तक अर्जित भाषिक कौशलों (सुनना, बोलना, पढ़ना, लिखना और चिंतन) का उत्तरोत्तर विकास।
- सृजनात्मक साहित्य के आलोचनात्मक आस्वाद की क्षमता का विकास।
- स्वतंत्र और मौखिक रूप से अपने विचारों की अभिव्यक्ति का विकास।
- ज्ञान के विभिन्न अनुशासनों के विमर्श की भाषा के रूप में हिंदी की विशिष्ट प्रकृति एवं क्षमता का बोध कराना।
- साहित्यकीप्रभावकारीक्षमताकाउपयोगकरतेहुएसभीप्रकारकीविविधताओं(राष्ट्रीयताओं,धर्म,जेंडर,भाषा)केप्रति सकारात्मक और संवेदनशील रवैये का विकास।
- जाति, धर्म, लिंग, राष्ट्रीयताओं, क्षेत्र आदि से संबंधित पूर्वग्रहों के चलते बनी रूढ़ियों की भाषिक अभिव्यक्तियों के प्रति सजगता।
- विदेशी भाषाओं समेत अहिंदी भाषाओं की संस्कृति की विविधता से परिचय।
- व्यावहारिक और दैनिक जीवन में विविध किस्म की अभिव्यक्तियों की मौखिक व लिखित क्षमता का विकास।
- संचार माध्यमों (प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक) में प्रयुक्त हिंदी की प्रकृति से अवगत कराना और नए-नए तरीके से प्रयोग करने की क्षमता से परिचय।
- सघन विश्लेषण, स्वतंत्र अभिव्यक्ति और तर्कक्षमता का विकास।
- अमूर्तन की पूर्व अर्जित क्षमताओं का उत्तरोत्तर विकास।
- भाषा में मौजूद हिंसा की संरचनाओं की समझ का विकास।
- मतभेद, विरोध और टकराव की परिस्थितियों में भी भाषा के संवेदनशील और तर्कपूर्ण इस्तेमाल से शांतिपूर्ण संवाद की क्षमता का विकास।
- भाषा की समावेशी और बहुभाषिक प्रकृति के प्रति ऐतिहासिक नज़रिए का विकास।
- शारीरिक और अन्य सभी प्रकार की चुनौतियों का सामना कर रहे बच्चों में भाषिक क्षमताओं के विकास की उनकी अपनी विशिष्ट गति और प्रतिभा की पहचान।

घटक २ - ब. १ - हिंदी भाषा का महत्व (मूल्य संवर्धन के परिप्रेक्ष मे)

क) **मानसिक विकास**

बचपन के आरम्भिक दिनों में विचार विनिमय का आधार मातृभाषा ही है। बालक की समस्त मानसिक शक्तियों (कल्पना, ध्यान, स्मृति, चिंतन,मनन) के विकास का माध्यम मातृभाषा ही है। भाषा के अभाव में बालक का मानसिक विकास असंभव है।

ख) **संवेगात्मक विकास**

भाषा बालक के संवेगों की अभिव्यक्ति का माध्यम है। यह सच है कि हर्ष, क्रोध, भय, घृणा, चिंता आदि भावों की अभिव्यक्ति कुछ अन्य संकेतों से भी संभव है। पर सभी भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति संकेतों द्वारा संभव नहीं है। उनके लिए हमें भाषा का ही सहारा लेना पड़ता है। इसके अतिरिक्त भाषा बालक के संवेगात्मक विकास का आधार ही नहीं बल्कि संवेगों के उदात्तीकरण का भी माध्यम है।

ग) **नैतिक विकास**

भाषा के माध्यम से ही बालक अपने संपर्क में आने वाले छोटों तथा बड़ों के प्रति स्नेह एवं आदर प्रकट करना सीखता है। सत्य बोलने या अच्छे आचरण की शिक्षा भी आरंभ से परिवार के लोगों से ही उसे मिलती है। जीवन मूल्यों एवं आदर्शों के बारे में भी वह परिवार से ही सीखता है। अत: भाषा बालक के नैतिक एवं चारित्रिक विकास की आधारशिला है।

घ) **सामाजिक विकास**

बालक अपने परिवार तथा पड़ोस के अन्य बच्चों के साथ लड़ता, झगड़ता, खेलता रहता है। इन सब क्रिया कलापों का माध्यम भाषा ही होती है। भाषा के ही माध्यम से सामाजिक गुणों तथा व्यवहार कुशलता का विकास होता है।

ब. २ वैश्विक स्तर पर हिंदी भाषा का महत्व

भूमण्डलीकरण के इस दौर में हिंदी का समृद्ध स्वरूप विश्व स्तर पर आच्छादित हो रहा है। यह कोई अतिशयोक्ति नहीं है बल्कि हिंदी की निरंतर विकासवान यात्रा का सच है।

पठन-पाठन, व्यापार, मीडिया, विज्ञापन, विदेश नीति, न्याय क्षेत्र, चिकित्सा आदि क्षेत्रों में हिंदी की पकड़ मजबूत हुई है। सूचना एवं संप्रेषण के सशक्त माध्यम के रूप में हिंदी का

फलक विस्तृत हो रहा है। हिंदी 22 देशों में करीब सौ करोड़ लोग बोलते हैं इसीलिए इसे संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा के रूप में मान्यता दिलाने का प्रयास किया जा रहा है।

10-12 सितम्बर, 2015 को 10 वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन भोपाल में आयोजित हुआ जिसका प्रमुख उद्देश्य 'हिंदी भाषा एवं साहित्य का प्रचार करना, इसे विश्व भाषा के रूप में स्थापित करना, हिंदी को शिक्षा का अग्रणी एवं महत्वपूर्ण माध्यम बनाना तथा विदेशी एवं भारतीय मूल के निवासियों द्वारा अनुसंधान तथा सृजित साहित्य में हिंदी भाषा के प्रयोग को बढ़ावा देना है। यह आवश्यक है कि संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को प्रवेश दिलाने के लिए भारत सरकार निश्चित और समयबद्ध कार्यक्रम पर कार्य करे। आवश्यकता इस बात की भी है कि राष्ट्रीय परिदृश्य में हिंदी की स्थिति को और भी सुदृढ़ किया जाए।

क. भाषा अध्ययन - अध्यापन के सामाजिक आधार

१. परिवार

शिक्षा जगत में परिवार अनौपचारिक साधन के रूप में प्राथमिक पाठशाला का स्थान उसी समय से ग्रहण करता चला आ रहा है, जब से संसार में मानव जीवन के अस्तितिव की कल्पना की जा सकती है। बालक की शिक्षा की श्रीगणेश परिवार में ही होता है। परिवार में माता अपने बालक की शिक्षा का प्रथम स्त्रोत होती है। माता रूपी गुरु के द्वारा प्रेमपूर्वक प्राप्त की हुई शिक्षा को बालक कभी नहीं भूलता। उसके व्यक्तित्व पर इस शिक्षा की अमित छाप लग जाती है।

एक बच्चे का लालन-पोषण जिस परिवार में होता है, वह उस परिवार के सदस्यों की भाषा को सहज रूप में सीख लेता है। सामान्य रूप से पाँच वर्ष की आयु का बालक अपनी माँ, परिवार के सदस्यों, मित्रों तथा मिलन-जुलने वालों के बीच रहकर अनौपचारिक रूप से मातृभाषा को बोलना सीख लेता है। जब वह किसी विद्यालय में पढ़ने के लिए प्रवेश लेता है तो वहाँ उसको उसकी मातृभाषा के भाषा-क्षेत्र की मानक भाषा का उच्चारण, पढ़ना और लिखना सिखाया जाता है। इस तरह बालक प्रारंभिक स्तर पार अपने परिवार तथा सामाजिक परिप्रेक्ष से भाषा सिखता है।

२. विद्यालय

सामाजीकरण की प्रक्रिया मै विद्यालय भी एक महत्वपूर्ण साधन या मध्यम हैं। सामाजीकरण की प्रक्रिया मै परिवार के बाद यह दुसरा महत्वपूर्ण स्थान है । विद्यालय का वातावरण बच्चों के लिये एक अनोखा, अपूर्व अनुभव प्रदान करता है । यह सामाजिक एवं बौद्धिक कौशल्य को अर्जित करने के लिये औपचारिक रूप से संगठीत वातावरण प्रदान करता है । विद्यालय मै अध्यापक औपचारिक रूप से विभिन्न विभिन्न विषयों की शिक्षा के साथ साथ सांस्कृतिक एवम् सामाजिक मूल्यों, परंपराओ, रीति-रिवाजोंका ज्ञान एवं अन्य ज्ञानवर्धक जानकारियां प्रदान करते हैं । अध्यापक की बच्चों के साथ साथ मिलकर रहने, परस्पर सहिष्णुता, प्रेम, स्नेह, शिष्टाचार, अनुशासन, तौर-तरीका, स्वच्छता रहन-सहन में क्रमबद्धता एवं नियमितता पारस्परिक संवाद में निपुणता लाना समसामयिक विषयों पर विचार इत्यादि का संवर्धन बालको में करते हैं ।

३. समवयस्क समूह

हम उम्र साथी का बालक के सामाजिक करण पर गहरा प्रभाव पड़ता है । बालपन की विशेषता है, कि प्रत्येक बालक अपने हम उम्र के साथ खेलना चाहता है । उसके एक मित्र मंडली होती है और वह उसका एक सदस्य होता है । हम उम्र साथियों के साथ बालक किसी जातिगत, वर्गगत, धर्मगत भेदभाव से अछूता रहकर आंतरक्रिया द्वारा आनंद प्राप्त करता है । इस कार्य में उसके साथ ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । बालक के सामाजिक करण विकास का एक प्रमुख अभिकरण खेल समूह है । हम उम्र के साथ खेल में एवं शिक्षा प्राप्त करने से जहां एक और बालको का मनोरंजन होता है । वहीं दूसरी ओर उनका सामाजिक विकास एवं सामाजिकरण होता है । बच्चे खेलों के माध्यम से सहयोग, अनुकूलन, उत्तरदायित्व एवं प्रतिस्पर्धा आदि सामाजिक गुणों का आयोजन करते हैं । समूह की सदस्यता के कारण उनमें नेतृत्व, उत्साह, सद्भावना, सहानुभूति आदि सामाजिक गुणों का विकास होता है और साथ ही उनकी आदतों, रूचियों, और जीवन दर्शन का निर्माण होता हैं।

४. समुदाय

अपने बचपन में बच्चे अधिक से अधिक समय समुदाय के साथ बिताते हैं। समुदाय यानि परिवार, दोस्तों, अन्य संबंधों और पड़ोसियों के साथ एक समुदाय में शामिल होने से बच्चे के विकास में महत्वपूर्ण सहयोग मिलता हैं। समुदाय में बच्चा एक संबंध की भावना, आत्म की मजबूत समझ के साथ बड़ा होता है। एक दूसरे से जुड़े रहने की भावना बच्चे को भावनात्मक और शारीरिक रूप से सुरक्षित और मूल्यवान महसूस करवाती है। बच्चे में सामाजिक क्षमताओं का विकास एक-दूसरे के साथ बांटने और दूसरों की देखभाल करने की भावना को प्रेरित करता है। एक समुदाय का हिस्सा होने से बच्चा कभी भी अकेला महसूस नहीं करता है।

एक अनुसंधान से पता चलता है कि बच्चे के मस्तिष्क के विकास के लिए उसका सक्रिय शारीरिक और मनोभावनात्मक होना आवश्यक है। अनुसंधान ने यह भी साबित किया है कि बच्चे निकट और भरोसेमंद संबंधों के चलते बढ़ते और विकसित होते हैं। इन संबंधों से उन्हें प्यार, संरक्षण, सुरक्षा, उत्तरदायित्व और प्रोत्साहन मिलता है। रिश्ते के साथ बच्चे का पहला अनुभव माता-पिता और उसका परिवार घर होता है।

माता-पिता बच्चों के प्रारंभिक वर्षों में एक शिक्षक के रूप में उन्हें सामूहिक आदर्श का सन्दर्भ सिखा सकते है। अभिभावकों को अपने बच्चों को शिक्षित करने के लिए एक समुदाय-आधारित दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।

५. जनसंपर्क मध्यम

विचारों, भावों और सूचनाओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचाना ही संचार माध्यम का मुख्य काम होता है। संचार माध्यमों में समाचार पत्र, रेडियों, दूरदर्शन आदि का महत्व बहुत अधिक है जिस कारण इन से जुड़ा प्रेस वर्ग यानी पत्रकार वर्ग आज चौथा खंभा के नाम से जाना जाता है। शिक्षा, कृषि, बाजार भाव, शेयर, अर्थ, स्वास्थ्य जगत, अपराध, मौसम आदि की जानकारियाँ संचार माध्यम से प्रकाशित प्रसारित की जाती है। तथा दूरदर्शन पर प्रसारित अनेक शिक्षा से जुडे कार्यक्रमो के माध्यम से बालक स्वयं अध्ययन क्र सिखता हैं। इंटरनेट के मध्यम से अपनी भाषा कौशल्यो का विकास कर सकता है ।

Unit 3

अ. हिंदी भाषा अध्यापन के सिद्धांत

१) अनुकरण का सिद्धांत (Theory of imitation)

बच्चे अनुकरण द्वारा जल्दी सीखते हैं बच्चे अपने शिक्षक के बोलने,, लिखने स्वर एवं गति आदि का अनुकरण करके वैसे ही सीखने का प्रयत्न करते हैं। अतः शिक्षकों को स्वयं अपनी उच्चारण, बोलने की गति, लेखन शुद्ध तथा स्वच्छ रखना चाहिए ।

२) अभिप्रेरणा एवं रुचि का सिद्धांत (Theory of motivation and interest)

सिद्धांत के अनुसार भाषा तथा उसकी पाठ्य सामग्री के प्रति रुचि उत्पन्न करना आवश्यक है। शिक्षण प्रणालियों का चुनाव बच्चों की रुचि एवं आवश्यकताओं के अनुरूप किया जाना चाहिए।

३) अभ्यास का सिद्धांत (Theory of principal)

इसके अनुसार व्यक्ति जिस कार्य को बार-बार करता है। उसे शीघ्र सीख जाता है। एवं जिस क्रिया को बहुत समय तक नहीं करता उसे भूलने लगता है। अतः भाषा शिक्षण के समय छात्रों को अभ्यास करते रहना चाहिए। उदाहरण के लिए नए शब्दों को बोलने का अभ्यास करना चाहिए ।

४) समन्वय का सिद्धांत (Theory of coordination)

मनोवैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया है, कि बच्चे उन विषयों एवं क्रियाओं में अधिक रुचि लेते हैं। जिसमें उनके वास्तविक जीवन से संबंधित हो अतः शिक्षकों पाठ पढ़ाते समय उसे छात्रों के जीवन से जोड़ने का प्रयास करना चाहिए जिससे छात्र उसे शीघ्र ग्रहण कर पाए।

५) व्यक्तिगत विभिन्नता का सिद्धांत (Theory of individual difference)

प्रतीक बालक एक दूसरे से भिन्न होता है कक्षा में छात्रों में व्यक्तिगत विभिन्नता पाई जाती है ,इसीलिए व्यक्तिगत विभिन्नता को ध्यान में रखते हुए भाषा शिक्षण करना चाहिए। छात्रों

की व्यक्तिगत परेशानियों को ध्यान में रखते हुए उनका निवारण करने का प्रयास करना चाहिए ।

६) क्रियाशीलता का सिद्धांत (Theory of creativity)

बालक को करके सीखने में आनंद का अनुभव होता है क्या या प्रमुख शिक्षा शास्त्री ने जैसे फ्रोबेल, डिवी, मोंटेसरीने इस सिद्धांत पर बल दिया है। भाषा शिक्षण के समय छात्रों को सतत क्रियाशील रहना आवश्यक होता है। इससे छात्रों की अध्ययन में रुचि बढ़ती है। जैसे कि प्रश्न पूछना। एवं मौखिक व लिखित कार्य करना।

घटक ३ - ब. हिंदी अध्यापन के सूत्र

- **शिक्षण सूत्र का अर्थ (Meaning of Teaching Maxims)**

कामेनियस एवं हरबर्ट स्पेन्सर आदि ने अपने अनुभवों के आधार पर शिक्षण के कुछ सामान्य नियम निर्धारित किये थे, जिन्हें बाद में शिक्षण सूत्रों के नाम से जाना जाने लगा।

कक्षा कक्ष में प्रत्येक विषय शिक्षक के सामने महत्वपूर्ण प्रश्न होते हैं कि..

१. मूल पाठ का प्रारम्भ कैसे किया जाये ?
२. शिक्षण कब और किस क्रम में किया जाये ?
३. बच्चों का ध्यान कैसे आकर्षित किया जाये ?
४. पाठ व विषय में उनकी रुचि कैसे उत्पन्न की जाये ?
५. शिक्षण अधिगम सामग्री का प्रयोग कब, कैसे और कहाँ पर किया जाये ?

शिक्षकों की उपरोक्त कठिनाइयों का समाधान करने के लिए मनोवैज्ञानिकों व शिक्षाशास्त्रियों ने अपने अनुभवों व विचारों को सूत्र रूप में प्रस्तुत किया है जिन्हें शिक्षण के सूत्र कहा जाता है। ये सूत्र उस मार्ग की ओर संकेत करते हैं जिस पर चलकर शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया सुगम, रुचिकर, प्रभावशाली व वैज्ञानिक बन जाती है। ये सूत्र ‘बाल प्रकृति’ पर आधारित हैं।

अतः प्रत्येक अध्यापक को शिक्षण कला में सफलता व दक्षता प्राप्त करने के लिए अपने विषयज्ञान के साथ-साथ शिक्षण सूत्रों का ज्ञान होना भी आवश्यक है कि किस सूत्र का प्रयोग उसे किस स्थान पर और कैसे करना है ताकि उसके छात्र विषयवस्तु को सरलता से समझ सकें।

- **शिक्षण सूत्र की परिभाषा (Definition of Teaching Maxims)**

रेमण्ट के अनुसार- " शिक्षण सूत्र पथ प्रदर्शन करते हैं जिसमें सिद्धांत से व्यवहार में सहायता के लिए अपेक्षा की जाती है।"

ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार– "सूत्र एक आम सच्चाई है जो विज्ञान एवं अनुभव से ली जाती है। ये सूत्र अध्यापक को सुचारु रूप से शिक्षण में मदद करते हैं। विशेष रूप से प्रारम्भिक कक्षाओं में पठन-पाठन की क्रिया आसान हो जाती है, क्योंकि ये सभी सूत्र छात्र को ध्यान में रखकर बनाये गये हैं।"

- **शिक्षण के विभिन्न सूत्र (Different Formula of Teaching)-**

1. सरल से जटिल की ओर

इस सूत्र का आशय यह है कि छात्रों को पहले सरल व फिर जटिल बातों की जानकारी दी जाये जिससे पाठ व विषय में उनकी रुचि व ध्यान लगा रहे। यह क्रम बाल विकास के अनुकूल व मनोवैज्ञानिक है क्योंकि बच्चा आयु बढ़ने व मानसिक विकास के साथ जटिल बातों को भी समझने लगता है। यदि अध्यापक प्रारम्भ में ही कठिन बातों/तथ्यों को छात्रों को बताने लगें तो वे उसे समझने में असमर्थ रहेंगे। इससे शिक्षक का प्रयास व्यर्थ हो जायेगा। उदाहरणार्थ- हासिल के जोड़ व घटाना सिखाने से पहले बच्चों को गिनती व साधारण जोड़, घटाना सिखाना चाहिए।
हमारे देश का इतिहास छोटी-छोटी कहानियों के रूप में बच्चों को सरल प्रतीत होगा परन्तु युद्धों, घटनाओं, सन्धियों व शासन प्रबन्ध के विस्तृत रूप में यह अत्यन्त कठिन लगेगा।

2. ज्ञात से अज्ञात की ओर

इस सूत्र के अनुसार शिक्षक को बालकों के पूर्व ज्ञान को जाँचकर उसी के आधार पर उन्हें नया ज्ञान देना चाहिए अर्थात् उसे पहले वे बातें बतानी चाहिए जिन्हें वह जानता है फिर उस विषयवस्तु पर आना चाहिए जिन्हें वह नहीं जानता क्योंकि सर्वथा नवीन तथ्य बच्चे के लिए कठिन होते हैं। किसी पाठ में छात्रों की रुचि व ध्यान तभी संभव है जब उसमें जानकारी व नयापन दोनों सम्मिलित हों। अतः शिक्षक को पढ़ाने से पूर्व छात्रों का पूर्वज्ञान अवश्य जान लेना चाहिए।
उदाहरणार्थ- भाषा शिक्षण में वर्णमाला की जानकारी कराते समय प्रत्येक वर्ण से सम्बन्धित वस्तु की जानकारी करायें तत्पश्चात् उसी वर्ण से सम्बन्धित एक से अधिक वस्तुओं की जानकारी कराई जा सकती है। जैसे- क से कमल, कलम, कलश, कबूतर तथा ख से खरगोश, खत, खड़ाऊं आदि

3. स्थूल से सूक्ष्म की ओर

बच्चों के शारीरिक विकास के साथ-साथ उनका मानसिक विकास भी होता है। शैशवावस्था में वह सूक्ष्म/अमूर्त वस्तुओं के बारे में नहीं जानता परन्तु स्थूल/मूर्त पदार्थों को सरलता से जान लेता है। आयु बढ़ने के साथ-साथ उसमें सूक्ष्म भावों/तथ्यों/वस्तुओं को समझने की क्षमता का विकास होता जाता है। अतः शिक्षकों को छोटे बच्चों को पढ़ाते समय प्रारम्भ में केवल मूर्त वस्तुओं का ही प्रयोग करना चाहिए और उनकी सहायता से सूक्ष्म बातों को बताना चाहिए।
उदाहरणार्थ- गणित में जोड़, घटाना सिखाने के लिए गेंद, गोली, कंकड़ आदि का प्रयोग किया जा सकता है।
भूगोल में नदी, पर्वत, समुद्र, झीलों, तालाबों, कुओं आदि का ज्ञान प्रत्यक्ष प्रदर्शन (भ्रमण) या फिर मॉडल, चित्र, चार्ट आदि के माध्यम से सरलतापूर्वक कराया जा सकता है।

4. पूर्ण से अंश की ओर

इस सूत्र का आधार गेस्टॉल्टवाद (अवयवीवाद) है। गेस्टॉल्ट मनोवैज्ञानिकों के अनुसार हम किसी वस्तु को उसके पूर्ण रूप में ही देखते हैं। बालक के सामने कोई वस्तु आने पर वह सर्वप्रथम पूर्ण वस्तु को ही देखता, जानता व समझता है उसके विभिन्न अंगों/अंशों को नहीं।

जैसे- बालक सर्वप्रथम किसी वृक्ष को उसके पूर्ण रूप में ही देखता है उसके भागों के बारे में अलग-अलग नहीं। शिक्षक को उसके इस पूर्व ज्ञान से लाभ उठाकर उसे वृक्ष के अंगों जड़, तना, डाली, पत्ती, फल, फूल आदि के बारे में जानकारी देना चाहिए। उदाहरणार्थ- कम्प्यूटर का ज्ञान कराने के लिए पहले कम्प्यूटर व फिर उसके भागों जैसे- मॉनीटर, की बोर्ड, सी.पी.यू, माउस, प्रिन्टर का ज्ञान कराया जाये। भूगोल में पहले भारत का मानचित्र दिखाकर फिर राज्यों का ज्ञान कराया जाये।

5. प्रत्यक्ष से अप्रत्यक्ष की ओर

इस सूत्र के अनुसार छात्रों को सबसे पहले उनके द्वारा देखी गई वस्तुओं के बारे बताना चाहिए तत्पश्चात् उन वस्तुओं के बारे में, जिन्हें वह नहीं देख सकता है। अर्थात् उन्हें पहले उनके वर्तमान की जानकारी कराई जाये फिर उसी की सहायता से भूत या भविष्य की, क्योंकि जो वस्तुएं हमारे सामने होती हैं उनका ज्ञान हम आसानी से प्राप्त कर लेते हैं। अतः शिक्षण के समय शिक्षकों को छात्रों को अप्रत्यक्ष वस्तुओं/तथ्यों/घटनाओं की जानकारी देने के लिए पहले प्रत्यक्ष वस्तुओं, घटनाओं के उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए। उदाहरणार्थ- भाषा में चित्र पठन व अन्य विषयों में सहायक सामग्री (चार्ट, चित्र, मॉडल, मूर्त वस्तुओं) के माध्यम से बच्चों को अप्रत्यक्ष वस्तुओं के बारे में सरलता से जानकारी दी जा सकती है। सामाजिक विषय में ग्लोब, मॉडल, चित्र आदि के माध्यम से संसार के विविध भागों के बारे में बताया जा सकता है।

6. विशिष्ट से सामान्य की ओर

इस सूत्र के अनुसार अध्यापक को छात्रों के सामने पहले किसी प्रकरण से सम्बन्धित कई उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए फिर उन्हीं की सहायता से सिद्धान्त व नियम स्पष्ट करना चाहिए। स्वयं उदाहरण प्रस्तुत करके उन्हें निष्कर्ष निकालने के लिए प्रेरित करना चाहिए। यह सूत्र बालकों को निरीक्षण, परीक्षण, विचार, चिन्तन आदि के अवसर प्रदान करता हैं। अतः इसमें बच्चे रुचिपूर्वक सीखते हैं जिससे प्राप्त ज्ञान स्थायी होता है। विज्ञान, गणित तथा व्याकरण शिक्षण में यह सूत्र विशेष उपयोगी है। उदाहरणार्थ- संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण पढ़ाते समय पहले इनके एक से अधिक उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए फिर उन्हीं उदाहरणों को समेकित करते हुए इनकी परिभाषा को स्पष्ट करना चाहिए।

- **शिक्षण सूत्रों की शिक्षण में उपयोगिता**

शिक्षण के द्वारा ही शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सकती है। शिक्षा का महत्वपूर्ण और अन्तिम लक्ष्य छात्रों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना है। इस दृष्टि से शिक्षण का मुख्य उद्देश्य अधिगम है। छात्रों में अधिगम प्राप्ति को सुनिश्चित करना शिक्षक का प्रमुख दायित्व है। अपने दायित्व के कुशलतापूर्वक निर्वहन हेतु शिक्षक के लिए यह आवश्यक है कि वह शिक्षण की कला में दक्ष व निपुण हो। शिक्षण सूत्र इस कार्य में उसके लिए मार्गदर्शक की भूमिका निभाते हैं। इनके प्रयोग द्वारा वह अपने शिक्षण को सरलए रुचिकर बोधगम्य व बालोपयोगी बना सकता है। साथ ही इनके प्रयोग द्वारा वह बच्चों की सम्प्राप्ति को अपेक्षित स्तर तक पहुंचा सकता है। अध्यापन की सफलता हेतु प्रत्येक शिक्षक को इनकी जानकारी व प्रयोग में दक्षता अनिवार्य है। इससे कम समय व श्रम में वह बच्चों को सीखने हेतु प्रेरित करके अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।